ऐतिहासिक परम्परा में आद्य शङ्कराचार्य का काल

पं. अनन्त शर्मा
वेदपुराणस्मृति शोध पीठाचार्य
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

प्राचीन भारत में इतिहास का अत्यन्त पावन और उच्च स्थान रहा है। भगवान् के अनन्त नामों में एक नाम इतिहास भी है। महाभारत में भगवान् शिव के सहस्र नामों में एक नाम इतिहास 'इतिहासः सकल्पश्च गौतमोऽथ निशाकरः[1]' के रूप में गिना गया है।

महाभारत जैसे आदि परवर्ती वाङ्मय में प्राप्त यह भाव उत्तरकालिक कल्पना अथवा अर्थवाद रूप कथनमात्र ही नहीं हैं, ऐसे भाव वेदमूलक हैं। अथर्ववेद के व्रात्यकाण्ड में इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी को व्रात्य का अनुगमन करते हुए बताया गया है। वहाँ कहा गया है :-

स बृहती दिशमनुव्यचलत्[2]।
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्[3]।

डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार इन वाक्यों का अर्थ है कि 'वह बृहती दिशा में चला और उसके पीछे इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी चले[4]।' इसका स्पष्टीकरण करते हुए वे लिखते हैं, कि बृहती वाक् का ही नाम है। वाक् से ही समूचा ज्ञान भण्डार और वाङ्मय निकला।

डॉ. सम्पूर्णानन्द का अर्थ वाक् से वाणी अर्थ तक ही सीमित है। वेद और ब्राह्मणों में व्यक्त वाक् के स्वरूप की व्याप्ति यहाँ नहीं ली गयी है। ऋग्वेद का वागाम्भृणी सूक्त इसका निदर्शन है, इसका अन्तिम मन्त्र देखिये-

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव[5] ।।

अभिप्राय स्पष्ट है, कि वाक् ही भुवनों की आरम्भिका है। फलतः इसकी महिमा द्युलोक और पृथिवी लोक को व्याप्त करते हुए इनसे परे भी है, यह वाक् में ही अवस्थित हैं। 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' जैसे शतशः मन्त्र वाङ्मय में विप्रकीर्ण हैं। इसी आधार पर महाभारत आदि स्मृतियों में स्पष्ट कहा गया है-

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः[6]।।

इन उद्धरणों के प्रकाश में व्रात्यकाण्डीय मन्त्रों का अभिप्राय होगा कि व्रात्य (परब्रह्म परमात्मा) के सृष्टि के लिए उन्मुख होते ही उसके मन, प्राण, वाक् रूप अंशों में वाक् का विवर्तन होता है। यह विवर्तन इतिहास-पुराण आदि है। वस्तुतः इतिहास सृष्टि भी है तथा सृष्टि का घटक तत्त्व भी है। यह सृष्टि का बोधक ज्ञान भी है, जिसकी सनातनता व्रात्य के साथ बतायी गयी है।

इस सृष्टि में जो कुछ भी है, वह इतिहास का विषय है। यह तथ्य यद्यपि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है तथापि दृढता के लिए निम्नलिखित तैत्तिरीय वचन प्रस्तुत हैं :-

स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमान-चतुष्टयम्।
एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते[7] ।।

स्मृति, प्रत्यक्ष, इतिहास और अनुमान, ये सम्पूर्ण आदित्यमण्डल अर्थात् ब्रह्माण्ड के विधान के मूल और बोधक हैं।

इतिहास के इसी महत्त्व को दृष्टि में रख कर छान्दोग्य उपनिषद् में वेदों की गणना में पाँचवें स्थान पर इतिहास पुराण को रख कर उसे पाँचवा वेद तथा वेदों का वेद कहा गया है

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्[8] ... । यही कारण है कि भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने ऐतिह्य (इतिहास) में सम्पूर्ण आप्त उपदेश वेद आदि को गिन लिया है-

ऐतिह्यं नाम आप्तोपदेशः वेदादि[9]। अपने इसी महत्त्व से इतिहास अध्ययन में प्रमुख स्थान रखता था। धार्मिक कृत्यों के अङ्ग के रूप में भी इतिहासाध्ययन का अनुशासन है। मनु पितृकार्य में इतिहास वेद के अध्ययन का उपदेश देते हैं-

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानीतिहासाँश्च पुराणानि खिलानि च[10] ।।

पितृकर्म में स्वाध्याय अर्थात् वेद सुनाएँ। इस स्वाध्याय में अर्थात् वेद के इन मन्त्रों में धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण के विषय हों तथा उनके खिल हों।

शासक वर्ग के लिए विशेष रूप से इतिहास का ज्ञान अपेक्षित है, अतः प्रतिदिन इतिहासश्रवण अनिवार्य है। अश्वमेध के पारिप्लवाख्यान में सभी विषयों के उपदेश में इतिहास-उपदेश का भी विधान है, जो इसकी अनिवार्यता का उपलक्षण है। यहाँ आठवें दिन इतिहास वेद का क्रम है .. **तान् उपदिशति, इतिहासो वेदः सोऽयम्, इति कञ्चिद् इतिहासम् आचक्षीत**[11]। उन्हें उपदेश दिया जाता है, यह इतिहास वेद है, यह बता कर कोई इतिहास कहे।

अर्थशास्त्र के अन्तिम आचार्य महामति आर्य चाणक्य ने (ईसापूर्व 15वीं शती) इसी परम्परा के आधार पर शासक के लिए नित्य निश्चित समय पर इतिहासश्रवण को निश्चित दिनचर्या का रूप दिया है। वात्स्यायन विष्णुगुप्त कौटिल्य की मान्यता में वेद की पूर्णता इतिहास से ही है। अर्थशास्त्रीय प्रथम प्रकरण के तृतीय अध्याय में, जिसका नाम 'त्रयीस्थापना' है। वे कहते हैं-

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः[12]। वेद त्रयी अथर्व तथा इतिहास का नाम है और त्रयी साम ऋक् तथा यजुःरूप तीन अवयवों का नाम है। यहाँ त्रयी को तीन अवयवों से सम्पन्न अर्थ में लिया गया है, अथर्व तथा इतिहास को विषय के रूप में लिया गया है। इस प्रकार रचना और विषय को समुदित भाव से वेद बताया गया है। इतिहास की पूर्ववाङ्मयसम्मत असाधारण व्याप्ति को प्रकट करते हुए यह स्पष्ट करते हैं :- **पुराणम् इतिवृत्तम् आख्यायिका उदाहरणम् धर्मशास्त्रम् अर्थशास्त्रं च इतिहासः**[13] ।

पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र, ये सब 'इतिहास' हैं। इस इतिहास के स्वाध्याय के लिए शासक की दिनचर्या में दिन का पश्चिम भाग नियत किया गया है -

'पश्चिममितिहासश्रवणे'[14]

इतिहास के इस गौरव को देश भुला चुका था, वेद की नित्यता को तथा इतिहास की, काल विशेष में घटना का वर्णन करने वाली विधा के रूप में अनित्यता को लेकर वेद में इतिहास की गन्ध तथा स्वीकृति न करने वाले विद्वानों के इस विशाल वर्ग में तो इतिहास को और भी हीन स्थिति में पहुँचा दिया। इस स्थिति में विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन जी ओझा ने इतिहास को उसका विस्मृत गौरव प्रदान करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। वे वेद को यज्ञ, विज्ञान, इतिहास और स्तोत्र इन चार महास्कन्धों में विभाजित कर इस चिर प्रक्रान्त क्रान्तदृष्टि का परिचय देते हैं।

''यज्ञश्च विज्ञानमथेतिहासः स्तोत्रं तदित्थं विषये विभक्ताः ।
वेदे चतुर्धा त इमे चतुर्भिर्ग्रन्थैः पृथक्कृत्य निरूपणीयाः[15]।।''

सिद्धान्तवाद का यह प्रतिज्ञासूत्र ब्रह्मविज्ञान शास्त्र के सभी ग्रन्थों में दोहराया गया है। पञ्च ख्यातियों के विभिन्न ग्रन्थों का निर्माण भी उन्होंने किया है। इनमें भारत का पुरातन इतिहास विमर्शपूर्वक दिया गया है। जगद्गुरुवैभव और इन्द्रविजय भी इतिहास ही हैं।

जिस देश में ज्ञान के प्रस्थानों में इतिहास का शीर्षस्थान रहा है, आज उसी देश में उस इतिहास का इतना नगण्य और निर्जीव सा स्थान हो गया है, कि विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्वेच्छामूलक विषय से अधिक कोई महत्त्व नहीं रह गया है। शासनतन्त्र की भी इसके प्रति कोई आस्था नहीं है। तथाकथित इतिहासविद् भी अहं को प्रथम स्थान देते हैं तथा इतिहास को तोड़ने मरोड़ने में तनिक भी सङ्कोच नहीं करते। इन लोगों की परप्रत्ययनेयबुद्धिता भी स्पष्ट है, ये आज भी वैज्ञानिकता के नाम पर पाश्चात्य स्थापनाओं के मण्डन को ही अपना चरम लक्ष्य मानते हैं। यदि ऐसा न होता तो आज पूरे देश में तथ्यात्मक एक सा इतिहास होता, जो सभी मूर्धन्य इतिहासकारों के मिल जुल कर विचारने का सुन्दर परिणाम होता, किन्तु ऐसा है नहीं। न केवल इतना ही, अपितु इस ओर किये गये प्रयत्न भी निरर्थक ही रहे।

सन् 1948 में पं. भगवद्दत्त ने स्वतन्त्र भारत के महामहिम राष्ट्रपति और पीपल्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया के सञ्चालक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से निवेदन किया था। दुर्भाग्य है कि यह प्रस्ताव, यह निवेदन सफल नहीं हो सका। इससे इतिहासज्ञों की मानसिकता स्पष्ट है। उसी का परिणाम है, कि एक अलौकिक प्रतिभा और पुरुषार्थ के मूर्तरूप कोटि कोटि भारतीयों की श्रद्धा के केन्द्र जगद्गुरु आद्य शङ्कराचार्य जैसे व्यक्ति के इतिहास को भी विचारकों द्वारा दी गयी दृष्टि से आज तक देखते जा रहे हैं और अपेक्षित संशोधन नहीं कर पा रहे हैं, यह अत्यन्त खेद का विषय है।

ऐसा नहीं है कि इस दिशा में कोई प्रयास नहीं हुआ हो। प्रयास हुए भी हैं, किन्तु पाश्चात्य संस्कारों में पले तथा भारतीय दृष्टि से शून्य इन धुरन्धरों की दृष्टि में ऐसे प्रयास भारतीय परम्परा के प्रति आस्था को अन्धश्रद्धा तथा नहीं की भूमि पर स्थिति होने से एकांगी या अवैज्ञानिक मान लिए जाते हैं।

ऐसे लोग यह भूल जाते हैं, कि 'भारतीय दृष्टि' की आवश्यकता का अनुभव करने वाले और इसके लिए प्रेरणा देने वाले भी इतिहास के मूर्धन्य विद्वान् ही हैं। विसेण्टस्मिथ के इतिहास की आलोचना करते हुए प्रोफेसर विनय कुमार सरकार के ये विचार सदैव स्मरणीय और अनुसरणीय हैं कि 'स्मिथ ने जिस सामग्री को बरता है, वह भारतीय विद्वान् उसी का उपयोग करता तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिल्कुल दूसरी कहानी पेश करता।[16]' इसी को रायबहादुर डॉ॰ हीरालाल ने 'भारतीय दृष्टि' कहा है।[17] इसी भाँति भारतीय इतिहास परिषद् के इलाहाबाद के 1938 के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण में प्रोफेसर भण्डारकर ने भारतीय इतिहासकारों की बड़े जोर से भर्त्सना की थी, जो पाश्चात्यों की विचारधारा से प्रभावित होकर यह कहते हैं, कि भारतीयों को इतिहास की समझ नहीं थी।

कितने आश्चर्य की बात है, कि भगवान् शङ्कर का काल निर्धारित करने में अभाव प्रमाण को मूल आधार बनाया गया है। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग की भारत यात्रा सन् 631 से 640 तक रही है। इसके यात्रा विवरण में कहीं शङ्कराचार्य का उल्लेख नहीं है, अतः मान लिया गया है, कि इस समय तक शङ्कर का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

ब्रह्मसूत्र के शाङ्कर भाष्य में योगाचार के खण्डन में धर्मकीर्ति की कारिका का-

सहोपलम्भ नियमादभेदो नीलतद्धियोः[18]

अंश उद्धृत किया गया है । बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति का समय सन् 635-650 माना जाता है। फलस्वरूप शङ्कर निश्चय ही इसके बाद हुए हैं, यह आन्तरिक प्रमाण से सिद्ध है।

ये दोनों ही प्रमाणाभास हैं। ह्वेन्त्सांग बौद्ध था। प्रमुख रूप से बौद्ध वाङ्मय का अध्ययन और सङ्कलन करने यहाँ आया था। बौद्ध विचार विरोधी शङ्कर का उल्लेख उसके लिए अनिवार्य नहीं था। वहाँ अनेक श्रौत सूत्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का उल्लेख भी नहीं है, क्या ये ग्रन्थ भी उस समय तक नहीं बने थे? वस्तुतः यह आधार ही सर्वथा अयुक्त है।

स्वयं धर्मकीर्ति का समय ही प्रामाणिक नहीं है, अतः उससे शङ्कर का परवर्ती होना तो सिद्ध है, किन्तु काल निश्चित करना सर्वथा असङ्गत है।

'शङ्कर मन्दार मरन्द सौरभ' के नाम से निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध है--

निधिनागेभवल्ल्यब्दे विभवे मासि माधवे।
शुक्ले तिथौ दशम्यां तु शङ्करार्योदयः स्मृतः[19]।।

इसका अर्थ है, कि 3889 कलिवर्ष में विभव नामक संवत् में वैशाख शुक्ल दशमी को शङ्कर का जन्म हुआ। कलिसंवत् का प्रारम्भ ईसा से 3102 वर्ष पूर्व हुआ। तदनुसार 3889-3102 = 787 सन् शङ्कर के जन्म का आता है। कलिसंवत् तथा ईस्वी सन् के प्रारम्भिक मासों के अन्तर से 787 से 788 माना गया है।

शङ्कर ने 32 वर्ष की आयु भोगी थी, अतः इसका समय 788-820 बनता है।

यद्यपि इसके अतिरिक्त अन्य भी 6-7 मत और हैं, किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि उपर्युल्लिखित प्रमाण मात्र से यही काल विद्वानों द्वारा स्वीकृत कर लिया गया है।

पाश्चात्य विद्वान् प्रो. बर्नेल के द्वारा उद्भासित तथा ए.बी.कीथ से समर्थित इस मत के मानने वाले कतिपय प्रमुख भारतीय विद्वान् निम्नलिखित हैं :- श्री अक्षयकुमार दत्त (भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय), श्री सत्येन्द्र नाथ ठाकुर (बौद्धधर्म), श्री उपेन्द्र चन्द्र मुखोपाध्याय (वंशीय चरिताभिधान), सर रमेशचन्द्र दत्त (भारतवर्ष की सभ्यता), श्री महानुभाव पन्थ (दर्शन प्रकाश), श्री लोकमान्य तिलक (गीता रहस्य-परिशिष्ट), श्री यज्ञेश्वर शास्त्री (आर्यविद्या सुधाकर) महामहोपाध्याय पाण्डुरंग वामन काणे (धर्मशास्त्र का इतिहास), श्री नीलकण्ठ भट्ट (शङ्कर मन्दार मरन्द सौरभ) श्री बाबू गलाब राय एम.ए. (विक्रम स्मृतिग्रन्थ), रायबहादुर श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द्र ओझा (प्राचीन लिपि माला), श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद रूपकला (भक्तमाल-पियादास जी की टीका) और श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार (इतिहास प्रवेश)। डॉ. बलदेव उपाध्याय भी इन्हें सप्तम शतक का मानते हुए इसी मत के निकट हैं।

शङ्कर के कालनिर्णय के सन्दर्भ में प्रस्तुत उपर्युल्लिखित आधार एवम् ऐसे और भी अनेक आधारभूत तथ्यों का पर्याप्त परीक्षण पक्ष-विपक्ष रूप में विद्वानों द्वारा किया गया है। उन सभी का यहाँ निर्देश सम्भव नहीं है और न उसकी उपादेयता ही है, अतः इनसे भिन्न कुछ अन्य प्रमाण यहाँ दे कर शङ्कर के वास्तविक समय का निर्धारण करने का यत्न ही प्रमुख रूप में किया जाता है।

प्रथम तो इस पद्य का आधार ही विचारा जाए। यद्यपि कहा तो गया है, इसे शङ्करमन्दारमरन्दसौरभ का, किन्तु आज तक इसका मूल स्रोत नहीं मिला है। किस आधार पर यह कहा जा सकता है, कि यह समय आद्यशङ्कराचार्य का ही है ? इस पद के आचार्यों की एक लम्बी परम्परा 'शङ्कराचार्य' नाम से ही प्रसिद्ध है तथा इनमें 2-4 आचार्यों का तो प्रातिस्विक (निजी) नाम भी शङ्कर ही है। किसी अन्य शङ्कर के समय को आद्यशङ्कर का मान कर और अन्य भारतीय साक्ष्यों की उपेक्षा कर यह काल स्वीकार कर लेना सर्वथा अवैज्ञानिक और निराधार है। इसे मानक मान कर चलना हमारी स्वाध्याय वृत्ति की शिथिलता का प्रमाण है। शङ्कर और उससे सम्बद्ध साहित्य को यथावत् देखने का कष्ट ही नहीं किया गया है।

केवल वैशेषिक दर्शन को छोड़ कर शेष सभी दर्शनग्रन्थों पर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र की प्रौढ़ लेखनी चली है। वाचस्पति ने अपने न्यायसूचीनिबन्ध का समय स्वयं ने निम्नलिखित पद्य में दिया है

न्यायसूची निबन्धोऽसावकारि सुधियां मुदे ।
श्री वाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्कवसु वत्सरे[20] **।।**

वसु अंक वसु शब्दों से 8, 9, 8 अंक बनते हैं, इस प्रकार संवत् 898 न्यायसूची का लेखनकाल आता है,

जो सन् 841 है। शङ्कर के देह त्याग के 21 वें वर्ष में न्यायसूची का लेखन हुआ। शाङ्कर भाष्य पर भामती की टीका भी वाचस्पति की है। भामती में 1.3.28 सूत्रभाष्य व्याख्यान प्रसङ्ग में वे अपने ग्रन्थ तत्त्वबिन्दु का निर्देश करते हैं तथा ग्रन्थान्त पद्य में न्यायकणिका, तत्त्व समीक्षा, तत्त्वबिन्दु का नामतः निर्देश एवम् न्याय सांख्य योग और वेदान्त विषय के ग्रन्थों का नाम बिना निर्देश किया है। अतः भामती उनकी अन्तिम कृति है।

शङ्कर और कुमारिल के शिष्य मण्डन मिश्र के विधि विवेक पर वाचस्पति की न्यायकणिका टीका है। अलौकिक प्रतिभा के धनी शङ्कर केवल 7 वर्ष की अल्पायु में जिस गुरुतर कार्य का सम्पादन कर लेते हैं, वैसा कार्य वाचस्पति जैसे व्यक्ति यदि न कर पायें, तो भामती का प्रणयन उनके 50-50 वय के मध्य मानें और यह आयु यदि सन् 841 के पूर्व हो तो शङ्कर और वाचस्पति साथ साथ रहे हैं। न केवल ये ही, अपितु मण्डन और वाचस्पति भी साथ-साथ रहे हैं। अपने समय में विद्यमान गुरु (शङ्कर) और उनके शिष्य मण्डन की कृतियों पर वाचस्पति जैसा प्रौढ विद्वान् टीका लेखन भी करता है, यह मानना ही होगा। क्या यह बात स्वीकार करने योग्य है ?

भगवान् शङ्कर के अलौकिक प्रभाव को स्वीकार कर वाचस्पति की उनके और उनके शिष्यों के प्रति अगाध श्रद्धा को देख कर यह सम्भव भी मान लिया जाए, तो जयन्त के विषय में क्या कहा जाएगा, जिन्हें बड़े आदर के साथ वाचस्पति न्यायकणिका में याद करते हैं -

अज्ञानतिमिरशमनी परदमनी न्यायमञ्जरी रुचिराम् ।
प्रसवित्रे प्रभवित्रे विद्यातरवे नमो गुरवे[21] **।।**

जयन्त का समय सन् 768 के लगभग माना जाता है। यह शङ्कर से 20 वर्ष पूर्व का काल है। न्यायमञ्जरी में जयन्त, कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र आदि के विचारों की उनके तथा उनके ग्रन्थों के नाम को उद्धृत करते हुए आलोचना करते हैं। यह कैसे सम्भव है यदि शङ्कर 788 सन् में प्रादुर्भूत हुए हैं तो?

थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाये कि 100-50 वर्षों का अन्तर कोई अन्तर नहीं है, जयन्त से कुछ पूर्व शङ्कर का समय सन् 700 मान लिया जावे। यद्यपि इस मान्यता में साधारणतया कोई दोष नहीं है, तथापि स्वीकृत आनुमानिक आधार और मन्दारमरन्द का पद्य तथ्यहीन प्रमाणित होकर इतिहासकारों के विचारों का थोथापन तो प्रकट करते ही हैं। इसके साथ ही हम इसका क्या समाधान देंगे जो विप्रतिपत्ति स्कन्दस्वामी के निरुक्त भाष्य द्वारा उत्पन्न होती हैं।

निरुक्त 8.2 की व्याख्या में स्कन्दस्वामी ने 'तथा चोक्तं भट्टारकैः' प्रतीक से

पीनो दिवा न भुङ्क्ते चेत्यादिवचःश्रुतौ।
रात्रिभोजनविज्ञानं श्रुतार्थापत्तिरुच्यते[22] ।।

यह पद्य उद्धृत किया है, जो कुमारिल श्लोकवार्तिक के अर्थापत्ति परिच्छेद का बीसवाँ पद्य है। निरुक्त के इसी खण्ड (8.2) की व्याख्या में स्कन्दस्वामी ने कुमारिल के तन्त्रवार्तिक का 'कल्पनाद्धि प्रयोगाणाम्' पद्य इति भट्टारकैरभ्यधायि' द्वारा नाम निर्देशपूर्वक उद्धृत किया है।

इसी भाँति स्कन्द ने 3.11 की व्याख्या में माण्डूक्योपनिषत् पर गौडपादकारिका का उत्तरार्ध-

मायामात्रमिदं सर्वमद्वैतं परमार्थतः[23]

उद्धृत किया है, जो आगम प्रकरण की 17वीं कारिका है। पुनः यही पद्यार्ध निरुक्त 7.18 की व्याख्या में भी उद्धृत है। गौडपाद शङ्कर के दादा गुरु हैं और कुमारिल शङ्कर से कुछ बड़े समकालिक हैं। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि शङ्कर और कुमारिल स्कन्द के पूर्ववर्ती हैं।

यद्यपि स्कन्दस्वामी ने ऋग्भाष्य अथवा निरुक्त व्याख्या आदि में कहीं अपना समय नहीं दिया है, तथापि इनका समय सर्वथा सुनिश्चित है।

स्कन्दस्वामी के शिष्य हरिस्वामी ने शतपथ ब्राह्मण का भाष्य किया है। इसमें अपना परिचय दिया है तथा भाष्य प्रणयन का वर्ष भी लिखा है। उनके पद्य हैं -

नागस्वामिसुतोऽवन्त्यां पाराशर्यो वसन् हरिः ।
श्रुत्यर्थं दर्शयामास शक्तिः पौष्करीयकः ।।

श्रीमतोऽवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्य भूपतेः ।
धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्यच्छातपथीं श्रुतिम् ।।

यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्त त्रिंशच्छतानि वै।
चत्वारिंशत् समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिदं कृतम्[24]।।

इसका अभिप्राय यह है कि अवन्तिनरेश विक्रमादित्य के धर्माध्यक्ष हरिस्वामी ने अवन्ति में रहते हुए अपनी शक्ति के अनुसार श्रुति का अर्थ बताया है, अर्थात् शतपथ ब्राह्मण की व्याख्या की है। हरिस्वामी के पिता नागस्वामी

हैं। कलि के जब 3047 वर्ष बीत रहे थे, तब यह भाष्य लिखा गया था। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि ईस्वी सन् 3102 वर्ष पूर्व कलिसंवत्सर का प्रारम्भ होता है, फलस्वरूप 3047 कलि ईसवीय सन् से 55 वर्ष पूर्व का काल है। स्कन्दस्वामी के विषय में हरिस्वामी लिखता है

यः सम्राट् कृतवान् सप्त सोमसंस्थास्तथार्कश्रुतिम् ।

व्याख्याः कृत्वाध्यापयन्मां श्रीस्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरुः[25] ।।

जिसने सात सोमसंस्था सम्पादन से सम्राट् पद पाया है तथा व्याख्यापूर्वक ऋग्वेद मुझे पढ़ाया है, वे स्कन्द स्वामी मेरे गुरु हैं।

इस प्रकार स्कन्दस्वामी का समय विक्रम समय पूर्व प्रथम शती का प्रारम्भ सुनिश्चित है। स्कन्दस्वामी के द्वारा गौड़पाद (शङ्कर के दादा गुरु) तथा कुमारिल भट्ट (शङ्कर के समसामयिक) को उद्धृत करना इन दोनों की इनसे पूर्ववर्तिता का अकाट्य प्रमाण है। यह पूर्ववर्तिता न्यूनातिन्यून 100 वर्ष भी हो सकती है तथा सहस्रवर्ष पूर्व भी। इस प्रकार शङ्कर का जन्म 788 में होना मानना तो सर्वथा ऐतिह्यविरुद्ध और भ्रान्त है।

कुछ विद्वान् हरिस्वामी के पद्य में आये सप्त त्रिंशत् शतानि को सप्त और त्रिंशत्शतानि न लेकर सप्तत्रिंशत् शतानि के रूप में एक पद मानते हैं तथा इसका अर्थ 3700 करते हैं, तदनुसार 3740 कलि लेते हैं, जो सन् 638 है। इस अर्थ की युक्तायुक्तता पर विचार यहाँ प्रासङ्गिक नहीं है। यदि कुछ देर के लिए इसे स्वीकार कर भी लिया जाए तो हरिस्वामी की निरुक्त व्याख्या का काल इससे 38 वर्ष पूर्व भी स्वीकार कर लिया जाए तो सन् 600 आता है। कुमारिल आदि को न्यूनातिन्यून 50 वर्ष पूर्व भी मान लें, तो शङ्कर का सम्भावित काल 550 सन् आता है, जो इनके स्वीकृत काल 788 से 238 वर्ष पूर्व प्रमाणित होता है तथा सन् 788 वाले मत को धराशायी कर देता है। उचित यही है कि हरिस्वामी के शतपथ भाष्य निर्माण को 3047 कलि तदनुसार ईस्वी पूर्व 55 माना जाए तथा शङ्कर की इससे चिरपूर्वता को स्वीकारा जाए। वह कितना पूर्व है, इसके निर्धारण हेतु समुचित साक्ष्यों को खोजा जाए।

सौभाग्य से जिनविजय में भट्ट कुमारिल का जन्म वर्ष तथा शङ्कर का निधन वर्ष प्राप्त होता है जो निम्नलिखित है -

ऋषिर्वारस्तथापूर्णमादौ नाममेलनात्।
एकीकृत्य समेत्याङ्कः क्रोधी स्यात् तत्र वत्सरः ।।

भट्टाचार्यकुमारस्य कर्मकाण्डैकवादिनः ।
ज्ञेयः प्रादुर्भवस्तस्मिन् वर्षे यौधिष्ठिरे शके[26]**।।**

ऋषि = 7, वार = 7, पूर्ण = शून्य = 0, माक्ष–मनुष्य की आँखें 2, इन अंकों को वामगति की ओर से न्यस्त कर एक संख्या 2077 प्राप्त होती है , जो युधिष्ठिर शक है। ज्योतिष की परिभाषित नामावलि में यह संवत् क्रोधी नाम का है। इस संवत् में कर्मकाण्ड के महान् श्रद्धालु कुमारिल भट्टाचार्य का जन्म हुआ।

प्रचलित युधिष्ठिर शक कलि से 26 वर्ष पूर्व अथवा ईस्वी सन् से 3138 वर्ष पूर्व प्रवृत्त माना जाता है। जैन परम्परा इसे 468 कलि से अर्थात् 2634 ई. पूर्व से वैसे ही मानती है, जैसे कल्हण कलि के 653 वर्ष बीतने पर धर्मराज युधिष्ठिर के शासन का आरम्भ मानता है। कल्हण की यह भ्रान्त मान्यता वराहमिहिर के निर्दिष्ट युधिष्ठिर शक को यथावत् न समझने से बनी। यह एक पृथक् विचारणीय विषय है। अस्तु 2634-2077 = 557 ई. पूर्व का यह काल कुमारिल के जन्म का है।

शङ्करनिधनवर्ष (जिनविजय में) इस प्रकार है-

ऋषिर्बाणस्तथा भूमिर्माक्षौ वाममेलनात् ।
एकत्वेन समेताङ्कस्ताम्राक्षो नाम वत्सरः[27] **।।**

ऋषि = 7, बाण 5, भूमि = 1, माक्ष = 2, इनका 'अंकानां वामतो गतिः' के अनुसार विन्यास करने पर 2157 (जैन) युधिष्ठिर शक बनता है, तो 2634-2157 = 477 ई. पू. का वर्ष होता है। इस वर्ष का नाम ताम्राक्ष है। यह शङ्कराचार्य का निधन वर्ष, इसमें 32 का योग किया जाय तो शङ्कर का जीवन काल है, जो 509 ई पू. का वर्ष शङ्करोदय का आता है। । कुमारिल शङ्कर से बड़े थे, परम्परानुसार यह अन्तर 48 वर्ष का था। 509 में 48 जोड़ने पर 557 ई. पू. कुमारिल का जन्मकाल प्राप्त होता है, जिसका जिनविजयोक्त समय से सामञ्जस्य है

काञ्ची कामकोटि पीठ के 56 वें पीठाध्यक्ष (1524-1539 सन) श्री सर्वज्ञ सदाशिवबोध कृत 'पुण्यश्लोकमञ्जरी' के अनुसार शङ्कराचार्य का देहावसान 2625 कलिसंवत् है जो 3102 - 2625 = 477 ई.पू. है।

जब साहित्य के इतने सुपुष्ट प्रमाण हमें उपलब्ध हैं, तो क्या कारण है इन सबको अमान्य समझ लिया जाए। शङ्कराचार्य मठों में सुरक्षित क्रमबद्ध आचार्य परम्परा भी इन प्रमाणकों के अनुकूल है। .. शङ्कर ने वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए चार मठ स्थापित किये थे, जो स्थापना क्रमानुसार ज्योतिर्मठ, शारदामठ, शृंमेरी मठ तथा गोवर्धन मठ

है। इन मठों में आचार्यक्रम परम्परा सुरक्षित है। शारदापीठ और काञ्ची पीठ में संवत् निर्देश पूर्वक अध्यक्षता काल भी दिया गया है। गोवर्धन पीठ की आचार्य क्रम परम्परा तो है, किन्तु वर्ष काल नहीं दिये गये हैं। ज्योतिर्मठ में यह परम्परा सन् 1500 से दी गयी है, जो उच्छिन्न परम्परा की पुनः प्रतिष्ठा का आरम्भ काल है।

शारदापीठ की परम्परा के अनुसार शङ्कर का प्रादुर्भावकाल युधिष्ठिर संवत् 2631 तथा अवसान काल 2663 है। यह 32 वर्ष का उनका जीवन काल है। यही काल काञ्चीपीठ से समर्थित है, जो कलि संवत् 2593-2625 है। यह ईसापूर्व 509 -477 है।

इन दोनों संख्याओं की विभिन्नता को देखकर भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। युधिष्ठिर संवत् का सम्बन्ध युधिष्ठिर के राज्यारोहण से है, जो द्वापर युग का अन्तिम समय है। यह कलि संवत् से 38 वर्ष पूर्व का है। पाण्डवों के महाप्रयाण के अनन्तर कलि का आरम्भ होता है। फलस्वरूप उपरिनिर्दिष्ट संवतों में 38 वर्ष का अन्तर संवत् गणना का है। भगवान् शङ्कर के काल की मतभेद सूचकता का नहीं है। जैसे आज विक्रम संवत 2053 शाक 1918 सन् 1996 आपाततः भिन्न-भिन्न संख्याओं को लिए हुए भी एक ही समान वर्ष के बोधक हैं।

ऊपर दिये गये साहित्यिक प्रमाण तथा आचार्य के मठों की अविच्छिन्न परम्परा परस्पर समर्थक है ही। यहाँ के मनीषियों की अनुश्रुति भी स्पष्ट रूप से आद्य शङ्कराचार्य के इसी काल के पक्ष में है। राष्ट्रदृष्टि ऋषि दयानन्द प्रासङ्गिक रूप में 'बाईस सौ वर्ष हुए कि एक शङ्कराचार्य द्रविड देशोत्पन्न ब्राह्मण' जैसा निर्देश (सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास) करते हुए उसी प्राचीन अनुश्रुति को प्रमाणित करते हैं। यहाँ महाराज सुधन्वा का प्रसङ्ग भी है, जो द्वारका पीठ के आचार्यों की प्रकाशित सूची में शङ्कर के जीवन की प्रमुख घटनाओं में निबद्ध है।

शङ्कर के इस निर्णीत काल (ईसा पूर्व 509-477) के प्रकाश में शङ्कर सम्बन्धित विप्रकीर्ण सामग्री की यथायोग्य योजना कर अनेक ऐतिहासिक भ्रान्तियों को तो साधिकार दूर किया ही जा सकता है, अन्य कृतियों और कृतिकारों का भी काल जाना जा सकता है।

कम्बुज (वर्तमान में कम्बोडिया) के शिवसोम ने जिन भगवान् शङ्कर के चरणों में शास्त्रों का अध्ययन किया था, वे शङ्कर आद्यशङ्कराचार्य नहीं हैं। शिवसोम कम्बुज के महान् राजाओं में गिने गये प्रतापी नरेश इन्द्रवर्मा (सन् 1200) का गुरु तथा जयेन्द्राधिपति का दौहित्र था। कम्बुज के तत्कालीन शिलालेखों में से एक में शिवसोम सम्बन्धी पद्य निम्नलिखित है -

येनाधीतानि शास्त्राणि भगवच्छंकराह्वयात् ।
निश्शेष-सूरिमूर्धालि-मालालीढांघ्रिपंकजात्[28]**।।**

जिनके चरण कमलों पर प्रणत सभी विद्वानों के मस्तक रूपी भ्रमर सदैव मण्डराते रहते हैं, उन भगवान् शङ्कराचार्य से जिस शिवसोम ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया है।

इन्द्रवर्मा के शासनारूढ होने के समय सन् 877 में शङ्कराचार्य के निर्वाण को 57 वर्ष हो चुके थे। निश्चित ही शिवसोम के साथ आद्यशङ्कर का सम्बन्ध नहीं हो सकता । कम्बुज तथा शङ्कर की ख्याति हो और वहाँ के राजकुल का विद्याव्यसनी भारत में आकर विद्याग्रहण करे, इसके लिए कम से कम 150-200 वर्षों का काल अपेक्षित है। इस दृष्टि से यहाँ उल्लिखित शङ्कर काञ्ची कामकोटि के 38 वें आचार्य अभिनव शङ्कर हैं। इनका अध्यक्षता काल 52 वर्ष का है, जो कलिसंवत 3942 अथवा 840 सन् तक है।

हमें शङ्कर नाम देखते ही आद्यशङ्कराचार्य का स्मरण क्यों हो, आज भी सर्व साधारण में ये सभी पीठाधीश शङ्कराचार्य नाम से ही प्रसिद्ध हैं। भगवान् शब्द संस्कृत में आदर और श्रद्धा के अतिशय को बताने के लिए चिरकाल से सर्वत्र प्रयुक्त होता आया है, अतः शिवसोम के गुरु कोई भी शङ्कराचार्य हो सकते हैं।

पूर्वोद्धृत पद्य 'निधिनागेभवल्ल्यब्दे' द्वारा प्राप्त सन् 787-788 में काञ्चीकामकोटि के 37 वें आचार्य विद्याधन की अध्यक्षता निवृत्ति हुई थी। भावी पीढी का दायित्व है, कि प्राप्त सामग्री का पुनर्मूल्यांकन कर कुछ अतिप्रसिद्ध शङ्कराचार्यों का सही जीवनवृत्त सामने के समान रखें।

कभी केवल इसी भय से किसी तथ्य को स्वीकार करने में विप्रतिपत्ति होती है, कि प्रचलित तथ्यों को बदलते ही सम्पूर्ण इतिहास बदल जाएगा। सत्य अनुसन्धान में यह भय निर्मूल है। इतिहास की रक्षा हमारा धर्म है, इन भ्रान्तियों की नहीं। वस्तुतः इतिहास का बदल जाना असत् के स्थान पर सत् की स्थापना होना ही तो हमारा अभीष्ट है।

जब शङ्कर का समय 509 ईसा पूर्व और इनके साथ कुमारिल का समय 557 ई.पू. है, तो कुमारिल द्वारा स्मृत महाकवि कालिदास तथा वेदविदामग्रणी भर्तृहरि और भी प्राचीन प्रमाणित होते हैं, इनसे प्राचीन चन्द्राचार्य, जो व्याकरण शास्त्र के प्रवक्ता तथा पातञ्जलमहाभाष्य के उद्धारक हैं, प्रमाणित होते हैं, चन्द्रगोमी का काल ई.पू. 1183 है। इनसे पूर्व भगवान् पतञ्जलि का तथा उनसे पूर्व वार्तिककारों कात्यायन आदि का तथा इनसे पूर्व पाणिनि का काल ईसा से लगभग 29-30 शताब्दी पूर्व जाता है।

जब शङ्कर ही 509 ई.पू. हैं, तो धर्मकीर्ति अश्वघोष आदि बौद्ध विद्वानों का काल शङ्कर से सदियों पूर्व तथा इनसे सदियों पूर्व भगवान् बुद्ध का काल ई.पू. 1850 आता है। जैसे शङ्कर का आविर्भाव काल 1297 वर्ष पूर्व जाता है वैसे ही भामह, कालिदास, अश्वघोष, चन्द्रगुप्त मौर्य, भास आदि सैकड़ों व्यक्तियों का काल आँका जाता है, जो शताब्द सहस्राब्द पूर्व आएगा।

शङ्कर द्वारा अनेक पुराण स्मृतियाँ सूत्रग्रन्थ उद्धृत हैं, उनकी ऐतिहासिकता स्थिर होगी। अतः इन प्रबल साक्ष्यों के आधार पर हमें शङ्कर के यथार्थ काल 509 ई.पू. को स्वीकार करना चाहिये, यही वास्तविक सारस्वत साधना है।

सन्दर्भ

1. महाभारत / अनुशानपर्व - 17/18
2. अथर्ववेद - 15/6/10
3. अथर्ववेद - 15/6/11
4. व्रात्यकाण्ड / पृ.-35
5. ऋग्वेद - 10/125/8
6. महाभारत / शांतिपर्व - 232/24, 231/56, कूर्मपुराणःपूर्वार्द्ध - 2/29, मातृकाविलास-13
7. तैत्तिरीय आरण्यक - 12/1
8. छांदोग्योपनिषद् - 6/72
9. चरकसंहिता - वि. स्थ. 8/41
10. मनुस्मृति - 3 / 262
11. शतपथब्राह्मण - 13/4/3/12
12. कौटिलीय अर्थशास्त्र - 1/3/4,5
13. कौटिलीय अर्थशास्त्र - 1/4/1

14. कौटिलीय अर्थशास्त्र - 1/4/3

15. ब्रह्मविज्ञान (ओझा)

16. पोलीटिकल साइंस (क्वार्टी) - न्यूयार्क 1919/ पृ. 647

17. ओरियंटल कान्फ्रेंस - छठा अधिवेशन (1930) - रायबहादुर डॉ. हीरालाल (भाषण)

18. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य - 2/2/28

19. शंकरमन्दारमरन्द सौरभ

20. न्यायसूचीनिबन्ध - पुष्पिका

21. न्यायकणिका - 1/4

22. निरूक्त 8/2 (व्याख्या), श्लो.वा./अर्था.प./20वाँ पद्य

23. माण्डूक्योपनिषद् - 3/11 (स्कंदस्वामीकृत टीका)

24. शतपथब्राह्मण - हरिस्वामिकृतभाष्यपुष्पिका

25. शतपथब्राह्मण - हरिस्वामिकृतभाष्यपुष्पिका

26. जिनविजय

27. जिनविजय

28. कम्बुज से प्राप्त शिवसोम का शिलालेख / पद्य 23